वैदिक ऋचाओं में ऋत का स्वरूप

वैदिक साहित्य में मानव भाव के कल्याण की भावना सन्निहित है। वैदिक ऋचायें मानव भाव के कल्याण से समन्वित होने के कारण ही सर्वजनहिताय कहलाती हैं। जैसे पर्वतों पर पड़ी जलधारा, पर्वत पर ही सीमित न रहकर सर्वत्र प्रवाहित होती है जैसे ही वैदिक ज्ञानामृत विश्वभर के प्राणियों के लिए है। यहाँ हिन्दू-मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, बौध्द-जैन एवं यहूदी आदि की सीमायें नहीं, यही कारण है कि वैदिक सनातन धर्म को विश्वजनीनता का गौरव प्राप्त है। यजुर्वेद २६/२ की ऋचायें उल्लेखनीय हैं :-

''यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय च।।

अर्थात् मैं यह कल्याणमयी वेदवाणी मानवम मात्र के लिए कहता हूँ। ईश्वर के बनाये सूर्य, शशि, जल, भूतल, वनस्पतियों आदि, जो प्राणिमात्र के हितार्थ हैं, वैसे ही क्या ईश्वर प्रदत्त ज्ञान सबके लिए नही ? मनुष्योपयोगी कोई भी पदार्थ ऐसा नही, जिसका वेद में व्याख्यान न हो। ऐसे सर्वविद्यानिधान वैदिक साहित्य का परित्याग करने से ही विश्व-मानव व्याकुल है।

अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुःख एवं झूठ को सच मानना ही अज्ञान है जो पाप का मूल है, अविद्य का लक्षण योगदर्शन में इस प्रकार वर्णित है :-

''अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिर विद्या'' यो. दु. २/५/ शरीर अपवित्र है किन्तु अज्ञानी इसे पवित्र मानते हैं। किसी की सम्पत्ति चुर जाये तो वह कहता है, में लूट गया, लुटा तो धन, किन्तु वह स्वयं को लुटा हुआ मान बैठा। यह जीव का अज्ञान है जिससे वह निरन्तर पीडित होता हुआ, हीरा-जीवन को व्यर्थ गवां देता है। ईश्वरीय ज्ञान के अतिरिक्त संसार में कोई ऐसी शक्ति नही जो उसके अज्ञान का निवारण कर सके। अतः उसे ज्ञानाग्नि की प्राप्ति के लिए विश्वनियता ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिये कि वह मेधावी और ज्ञानवान बने किन्तु वह प्रकृति के नियमों के विरूद्ध चल कर स्वयं का अमूल्य जीवन अशान्तिमय एवं आडम्बरमय बना लेता है। जीवन का चरम लक्ष्य क्या है, इससे निरतन्तर अनभिज्ञ बना रहता है।

यह अमूल्य जीवन सुखशान्ति की खोज के लिए मिला है, किन्तु मानव चंचलसुखों के पीछे चलकर निरन्तर अशान्त रहता है, ''नियम'' अनुशासन में बाँधने के लिए होते हैं, सामाजिक नियम समाज और देश के लिए तथा नैतिक नियम आत्मोत्थान के लिए होते हैं, 'जिनका तोड़ना अभिषप्त जीवन का ही आरम्भ है ! सृष्टि नियम भी अत्यन्त बलवान, हैं, जिनके अनुकूल चलकर ही मानव सृष्टि के तत्वों को समझ सकता है किन्तु विपरीत चलने पर पथभ्रान्त हो जाता है।

वैदिक साहित्य में ''ऋत'' का स्वरूप पग-पग पर पदिलक्षित होता है :- **''ऋतस्य हि शुरूधः सन्ति, पूर्वीऋतस्य धीतिवृजिनानि हन्ति।**
ऋतस्य श्लोको वधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः।।
(भ्र. ४/२३/२)

वस्तुतः ''ऋत'' का अर्थ वैदिक ऋचाओं में सृष्टि नियमों की अनुकूलता है। बाष्प और अग्नि के बल को जानकर उनके अनुकूल व्यवहार से मानव ने रेलगाडी, वायुयान एवं जलपोत निर्मित किए। विद्युत की शब्द वाक्यता की सामर्थ्य समझकर रेडियो बनाया गया। गले में स्वरयन्त्र के रहस्य को समझकर, शब्द ग्राहक यन्त्र बनाया गया। आग की शक्ति ज्वलन शील है जिसका गुण है 'प्रकाश' कोई भी ऐसा वैज्ञानिक नही जिसने आग के इन दो गुणों को नष्ट करने का दुस्साहस किया हो, औरत का धर्म है रूप, सरना का रस, नाक का गन्ध, त्वचा का स्पर्श तथा कर्णेन्द्रिय का गुण है शब्द, जिसका जो धर्म है, वह उसे ही ग्रहण करता है। यह सब ईश्वरीय विधान ऋत की महिमा है, जिसे नही भूलना चाहिये। यह ऋतमहिमा अवर्तनीय है जो नित्य है। किन्तु सृष्टि नियम के विरूद्ध आचरण करना दुःख को आमंत्रण देना है। दुःख, कष्ट तथा पीड़ायें, पाप का प्रतिफल हैं, पाप से बचने का उपाय है सृष्टि नियमों को जान कर, उनका उल्लंघन न करना। अतः सृष्टि नियम का ज्ञान होना आवश्यक है।

वैदिक ऋचाओं का आवाहन है **''ऋतस्य धीतिर्वृजनानि हन्ति''** अर्थात् ''ऋत'' का चिन्तन पापों को मारता है, ऋषियों की पावन प्रेरणा है कि जब मन में पाप की भावना उठे, ऋचाओं का जप करना चाहिये, जप का अभिप्राय 'दोहराव' से नही अपितु अर्थ विचार से है, यही कारण है कि योगदर्शन में कहा गया है -

''तज्जपस्तदर्शभावनम्'' (यो. द. ११२८)

वस्तुतः 'ऋत' का तत्वज्ञान बधिरों के कान भी खोल सकता है तथापि ऋग्वेद के नवम मण्डल में कहा है **''ऋतं वदन्नृद्युम्न''** (ऋ. ९/११३/४) ऋतवादी ऋत से ज्योतिर्मय हो जाता है क्योंकि- **'ऋतस्य दृढ़ा धरूणानि सन्ति'** (ऋ ४/२३/९) ऋत की धारण शक्तियाँ सबल हैं। वैदिक ऋचाओं में, ऋत

के विपरीत अन्त के त्यागने की कामना की गई है - ''**इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि**'' (य. १/५) अर्थात् मैं ऋत विरूद्ध को त्यागकर सत्य को प्राप्त करता हूँ। '' ऋत की महिमा जानकर अन्नत (झूठ) पर चलना अशान्ति का मूल है। वर्तमान अन्ध भौतिक वादी युग, वैज्ञानिकोन्नति में मदमस्त होकर ''ऋत'' को भूलता जा रहा है, यही कारण उसके दु:ख का है। इतनी सुखोपलब्धियों के बाद भी निस्सम्बल, निरूपाय, एवं अभिशापित जीवन जी रहा है, जिसका कारण है सृष्टि नियमों के विपरीत चलना जिससे प्रकृति में भी असन्तुलन उत्पन्न हो गया है, यज्ञ भावना को भूलकर केवल भोगवादी होकर चलना स्वयं को धोखा देना है, अज्ञान की घोर निद्रा से जागने का उपाय है 'ऋत' का स्वरूप समझकर उसे हृदयंगम करना, तभी वह स्वयं का, समाज का, राष्ट्र का एवं विश्व का कल्याण करने में समर्थ हो सकेगा। .....

- डा० (श्रीमती) महाश्वेता चतुर्वेदी
प्रोफेसर्स कालोनी, (बरेली कालेज परिसर)
शामगंज, बरेली-२४३००५